पृष्ठ १२, इष्टोपदेश। पूज्यपादस्वामी, दिगम्बर मुनि हुए हैं। उन्होंने जगत के हित के लिये यह (शास्त्र) बनाया है। नौंवे श्लोक पर से थोड़ा लो। देखो! नौवाँ श्लोक है न?

दोहा – दिशा देश से आयकर, पक्षी वृक्ष बसन्त।
प्रात होत निज कार्यवश, इच्छित देश उड़न्त।।९।।

थोड़ा इसके ऊपर है। **अरे! यदि ये शरीरादिक पदार्थ तुम्हारे स्वरूप होते..** देखो! क्या कहते हैं? यह शरीर तो जड़ है। मिट्टी, धूल, पुद्गल है और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का आत्मा भिन्न है। लक्ष्मी आदि अपने से भिन्न है। कपड़ा, लक्ष्मी, कीर्ति (भिन्न है)। कीर्ति भी जड़ है। जो आवाज निकलती है वह। **शरीरादिक..** आदि शब्द में यह सब

है। **पदार्थ तुम्हारे स्वरूप होते..** यदि आत्मा का स्वरूप शरीररूप हो, लक्ष्मीरूप हो, पैसा, आबरू-कीर्ति, स्त्री, कुटुम्बरूप हो तो **तुम्हारे तदवस्थ रहते हुए,..** तू तो यहाँ रहता है और **अवस्थान्तरों को कैसे प्राप्त हो जाते?** रूपान्तर कैसे हो जाते? कहो, समझ में आया? तेरी चीज़ नहीं है। तू तो ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है। उसे भूलकर जो शरीरादिक परपदार्थ हैं, वे तेरे रहते हुए भी रूपान्तर हो जाते हैं। शरीर में रोग होता है। आत्मा है और शरीर नाश हो जाता है, वृद्धावस्था आ जाती है, जीर्ण हो जाता है, आँख में फूला पड़ता है, कान बहरा हो जाता है, आँख फूट जाती है। यह शरीर तो जड़ है, मिट्टी है। शरीर के रजकण की कोई भी अवस्था तेरी है ही नहीं। समझ में आया? तेरी हो तो तेरी स्थिति रहते वह कैसे बदल जाती है? ऐसा कहते हैं। कहो, ठीक होगा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं। तुम कहो, ऐसा नहीं। तुम तो शरीर में रोग के कारण दुःख मानते हो, यही मूढ़ता है, यह बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो आत्मा से शरीर परपदार्थ है तो उसकी अवस्था आत्मा के आधीन नहीं है। आत्मा है और शरीर की अवस्था बदल जाती है, आत्मा हो और लक्ष्मी चली जाती है, आत्मा हो और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार चले जाते हैं। वह तेरी चीज़ नहीं है, वह परचीज़ स्वतन्त्र है। कहो, समझ में आया? ऐई!

अवस्थान्तर.. तेरी इच्छा हो कि निरोग रहूँ, वह रह सकता है? इच्छा है कि मैं मर जाऊँ, तो मर सकता है? वह तो देह की स्थिति पूरी होनी होगी, तब देह छूट जायेगी और मैं लम्बे काल जिऊँ, तेरी इच्छा से जीवन है? शरीर की स्थिति जितने काल रहनी है, उतने काल रहेगी, तेरी इच्छा से बिल्कुल नहीं रहेगी। ऐसे भिन्न पदार्थ में अपना कार्य मानता है तो मूढ़ चार गति में भटकने के कर्म बाँधता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

शरीरादिक पदार्थ तुम्हारे स्वरूप होते.. भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। उसमें जो पुण्य-पाप के भाव विकार होते हैं; दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, वह तो विकार है; वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा चिद्घन आनन्दकन्द है और दया, दान, व्रत, काम-क्रोध के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे तो विकार हैं, आस्रव हैं। समझ में आया? दया, दान, व्रत-भक्ति

के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे पुण्यरूपी आस्रव हैं। वे आत्मा नहीं, आत्मा का स्वरूप नहीं। आहा..हा..!

यहाँ पूज्यपादस्वामी यह कहते हैं कि तेरी चीज़ भिन्न है और पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे तो आस्रवतत्त्व है। तू तो ज्ञायकतत्त्व चैतन्यमूर्ति है; अतः पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति और काम, क्रोधादि भाव, दोनों भाव होकर आस्रवतत्त्व है, बन्ध का कारण है। समझ में आया? समझ में नहीं आता। अनन्त काल से यह बात ली नहीं। ऐसे का ऐसा (चला है)। प्रभु! तू तो ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञान चैतन्य का सूर्य आत्मा है और अनाकुल आनन्द की मूर्ति आत्मा है। भगवान ने तो '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो**' भगवान तो कहते हैं कि तेरा जानपना, जानना-देखना तेरा उपयोग लक्षण है, वह तेरा आत्मा है और पुण्य-पाप के भाव (हों), वह आत्मा नहीं। वे तो आत्मा के स्वरूप से भिन्न विकार हैं। ये शरीर आदि पर तो कहीं रह गये। आहा..हा..! शरीर से मैं क्रिया करूँ, शरीर से मैं दूसरे का उपकार करूँ, शरीर से दूसरे को मारूँ, अपकार करूँ... मूढ़ है। शरीर तो पर है, उसकी क्रिया क्या तेरे आधीन होती है? समझ में आया? शरीर ऐसा लट्ठ (मजबूत) होवे तो भी उसके कारण से है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ माना था? मूढ़रूप से सत्ताप्रिय प्रकृति पोषण की थी। किया कहाँ था? धूल में। अभिमान किया था कि मैं शरीर रखता हूँ, अच्छा है। वह मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि, पापी है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। *(किसी श्रोता को आते हुए देखकर कहा) नजदीक आओ, यहाँ जगह है। पीछे लड़के हैं, उन्हें धूप में बैठना पड़ता है।* यह बात तो इनकार करते हैं। अभी तक रहा, वह शरीर तो शरीर के कारण रहा है। यह बात तो करते हैं। लाख बात परन्तु अन्दर समझ में नहीं आती। हटती नहीं। अभी तक किया। क्या किया? धूल किया था अभी तक? क्या किया था? समझ में आया?

शरीर का एक-एक रजकण, प्रत्येक रजकण अपनी पर्याय से परिणमन करता है, आत्मा से बिल्कुल नहीं। आहा..हा..! क्या जड़ के स्वरूप में चैतन्यस्वरूप प्रविष्ट हो जाता है कि जिससे उसे बनावे? और जड़ की पर्याय क्या आत्मा में प्रविष्ट हो जाती है कि आत्मा

को बना दे ? आत्मा को लाभ कर दे या नुकसान कर दे ? भान नहीं, भान। मूढ़ अनादि काल का (भटक रहा है)।

मुमुक्षु : अभी तक तो इच्छा प्रमाण कैसे चला है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ चला है ? अभी समझते नहीं। अभी भी इस मिथ्यात्व का ऐसा लकड़ा घुस गया है, ऐसा लकड़ा (बहुत विपरीतता)... बहुत पक्का कर डाला है, बहुत पक्का। यह तो निकलना बहुत कठिन, भाई ! इतने-इतने उपदेश आये, परन्तु इससे एक अक्षर कुछ जरा भी बात को समझते नहीं।

मुमुक्षु : बुखार आता था, तब कहाँ इच्छा थी तो भी आता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं कि अभी तक कैसे चला ? परन्तु चला उसके कारण। यह बात तो चलती है। इसके कारण रहा था। तुम्हारे कारण कब चला था ? हजार, लाख बार बात तो चलती है, हजार बार, परन्तु मिथ्याबुद्धि ऐसी सेवन की है न, ऐसी सेवन की है न... हमने यह रखा, अभी तक चला है। यह तो यहाँ इनकार करते हैं। पहले भी शरीर निरोग रहा, वह जड़ के कारण से; अपने आत्मा के कारण से नहीं और यह रोग रहे, वह आत्मा के कारण से नहीं। यह तो बात चलती है। ऐसा घूँट गया है। ऐसा घूँट गया है न... ओहो..हो.. ! इतने वर्ष से सुनते हैं, परन्तु अन्दर एक मचक खाता नहीं।

मुमुक्षु : ऐसा उपदेश है, तथापि उपदेश का असर क्यों नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष दिखता है या नहीं ? क्या आशय है, यह बात जरा भी पकड़ते नहीं। एक ही बात का गत काल में अभिमान किया है न ! अभी तक किया था न, अभी तक किया था न... परन्तु क्या किया था ? ऐई ! मोहनभाई ! क्या किया था ? इन मोहनभाई ने इसे अभिमान करने का सौंपा था। कर तू, भटक चार गति में, मुझे क्या है ? परन्तु यह करे क्या ? उसने किया था अभिमान। शरीर की क्रिया करता था ? इसके भाई हैं, दो भाई हैं। समझ में आया ? राम और लक्ष्मण। राम गये मोक्ष में, लक्ष्मण गये नरक में। उन्हें याद किया था, उन्हें याद किया था, हों !

यहाँ तो कहते हैं, भाई ! तू आत्मा है। आत्मा में जिसकी मौजूदगी है, अस्ति है, उसमें तो ज्ञान-आनन्द की मौजूदगी है। उसमें यह पुण्य-पाप के राग होते हैं, वे उसकी

मौजूदगी, स्वरूप में नहीं है। वे तो विकृतभाव हैं। वह विकृतभाव अज्ञानी अज्ञान से उत्पन्न करता है। अपने स्वरूप में विकार नहीं है। समझ में आया? आहा..हा..! अपना ज्ञानानन्द चैतन्य ज्योति सूर्य ज्ञानमूर्ति प्रभु में तो पुण्य-पाप का राग, विकल्प, विकार उसमें है ही नहीं। परन्तु अज्ञानी अनादि काल से अपनी अस्ति, मौजूदगी के भान बिना, अपनी विकार पर्याय पर लक्ष्य है तो नये-नये राग-द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, मिथ्यादृष्टि में विकल्प उठाकर मैंने काम किये, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहा..हा..! भारी कठिन बात।

यहाँ तो इससे और दूसरी बात करते हैं। तेरी अस्ति है और शरीर में रोग आता है, शरीर में निरोगता रहती है, जीर्णता होती है, क्षयरोग होता है तो तेरी अस्ति होते हुए कैसे होता है? वह परपदार्थ है। वह पर है तो उसकी अवस्था का होना उसके आधीन है, तेरे आधीन नहीं। अभी तक हम कर सकते थे। क्या धूल कर सकता था? अभी तक अभिमान किया था। मिथ्यादृष्टिपने का अभिमान (किया कि) मैंने शरीर को ऐसा रखा, मैंने स्वाधीनरूप से ऐसे काम किये। ऐसे मिथ्याभाव, भ्रमणाभाव, पाखण्डभाव किये थे। दूसरा इसने कुछ नहीं किया। ऐई.. धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : ये तो अमेरिका जा आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी अमेरिका गया नहीं। कौन कहता है? तुमको अभी अभिमान है? कहने में भी तुमको अभिमान है। कहने में ऐसा कहे, मैं अमेरिका गया था, वह भी अन्दर महा अभिमान है। कौन अमेरिका जाये? धूल जाये। वह तो शरीर गया। आत्मा अपने क्षेत्रान्तर से जाता था। शरीर उसके क्षेत्रान्तर से जाता था। आत्मा शरीर को ले जाता है और शरीर आत्मा को ले जाता है, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? भाई! बहुत सूक्ष्म बात है। ऐसा इसे अभिमान (है कि) मैं अमेरिका गया था। ये दूसरे नहीं गये, मैं अमेरिका गया था। धूल में भी गया नहीं आत्मा। मिथ्यात्व में गया था, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह सत्य बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सत्य बात होगी अभी। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उफान बाहर निकलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान सेवन किया है, मैं अमेरिका जाऊँ। अमेरिका कौन धूल जाता था ? आत्मा जो है, वह अपनी योग्यता से एक देश से दूसरे देश (में) क्षेत्रान्तर होता है और शरीर भी उसकी योग्यता से क्षेत्रान्तर होता है। आत्मा शरीर को क्षेत्रान्तर करे, अन्यत्र ले जाये, (यह मान्यता) मूढ़ है। यह तो बात करते हैं। तेरा पदार्थ परपदार्थ की अवस्था करता है, यह मान्यता मूढ़ मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया ? छगनभाई ! आहाहा ! ये भी सब बाहर जा आये हैं। बहुत भटकने गये थे न ? कहाँ ? रंगून और ब्रह्मदेश।

अरे ! भगवान ! कहते हैं कि, भाई ! सुन तो सही, प्रभु ! शान्त तो हो। तेरा स्वरूप तो प्रभु चैतन्य है न ! वह चैतन्य सत् है, वह कभी नाश होता है ? कभी नया उत्पन्न होता है ? वह तो है ही। ऐसी चीज़ की तुम्हें खबर नहीं और तुम्हारे पास में जो निकट में पदार्थ है, उसका रूपान्तर होता है तो मानता है कि मैं हूँ तो रूपान्तर हुआ। तू है और रूपान्तर हुआ तो तू है और चला कैसे जाता है ? समझ में आया ? शरीर-मिट्टी-धूल है, अजीवतत्त्व है। उसका रहना, टिकना, बोलना, हिलना, चलना, खाना, पीना, वह सब जड़ की क्रिया है। आत्मा बिल्कुल किंचित् इसमें नहीं कर सकता। आहा..हा.. ! समझ में आया ? अनादिकाल का परपदार्थ का अभिमान (किया), पर का अभिमान... अभिमान... अभिमान.. (किया)। समझ में आया ? हम तो लोहे के व्यापार किये। लाखों रुपये कमाये, ऐसा किया। लो ! इसने किया था, देखो ! दस लाख, बारह लाख कमाये। सरकार को सौंप दिया। दो-ढाई लाख रहे। सरकार सब ले गयी। ढाई, दस लाख में से। कौन ले ? कौन दे ? खबर नहीं। यह तो रजकण जगत के पदार्थ अस्तिरूप से सत्रूप से जड़ हैं। उन जड़ का जड़रूप से रहकर रूपान्तर होना, वह जड़ का स्वभाव है। वह तेरे कारण रूपान्तर होता है, लक्ष्मी कहीं जाती है और लक्ष्मी यहाँ आती है, वह तेरे कारण (आती-जाती है, यह) बिल्कुल मिथ्या बात है। यह कहते हैं। समझ में आया ? आहा..हा.. ! मैं हूँ तो पर की दया पलती है, यह मूढ़ मानता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। तू है और शरीर की, पर की अवस्था होना, वह तो उसके आधीन है। उसका आयुष्य हो तो शरीर रहता है, आयुष्य न हो तो शरीर छूट जाता है। क्या तेरे कारण उसका आयुष्य रहता है ? तू पर का स्वामी है कि मैंने पर की दया पाली, मैंने पर को मारा ? (ऐसा मानता है)। तूने भाव किये, भाव तूने किये, परन्तु भाव से पर

में कुछ कार्य हुआ, यह बिल्कुल शत-प्रतिशत मिथ्या बात, पाखण्ड है। समझ में आया? ऐई! बसन्तलालजी! भाई! तत्त्व तो ऐसा है। आहा..हा..! देखो न!

तुम्हारे तदवस्थ रहते हुए,.. तू आत्मा तो अन्दर है और वह अवस्थान्तर को कैसे प्राप्त हो गया? तेरा हो और तुझसे रहता हो तो शरीर कैसे ऐसा हो गया? और तेरी हो तो स्त्री क्यों चली जाती है? तेरी हो तो, पत्नी हो, और पति क्यों चला जाता है? क्या पत्नी तेरी है? क्या पति तेरा है? वह तो परचीज़ है। मूढ़ पत्नी ऐसा मानती है कि मेरा पति है। मूढ़ है। परद्रव्य तेरा पति कहाँ से आया? समझ में आया? गुलाबभाई! यह तो दूसरी बात है, बापू! यह तो बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा!

कहते हैं कि भाई! तेरी चीज़ दूसरी, यह दूसरी चीज़। दूसरी चीज़ें रहना या न रहना, वह तेरे आधीन नहीं हैं। तू मानता है कि मेरे आधीन वह रही है। मूढ़ है। तेरे आधीन रहती हो तो तू रहते हुए वह चीज़ क्यों चली जाती है? स्त्री चली जाये, पुत्र चला जाये, लक्ष्मी चली जाये, इज्जत चली जाये, सब चला जाता है।

मुमुक्षु : न जाये उसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : न जाये, उसे उसके कारण रही है, वह यहाँ कहते हैं। चीज़ रहे तो उसके कारण रहती है। क्या तेरे कारण रहती है? शरीर ऐसा रहना, लक्ष्मी रहना, बंगला रहना, मकान रहना, वह तो उसके कारण से-जड़ के कारण से है। क्या आत्मा के कारण से वह चीज़ रहती है? वह तो परचीज़ है। समझ में आया? नेमीदासभाई का दृष्टान्त नहीं था? गुलाबभाई का पता नहीं? बहिन (संवत्) १९८७ में अकेली थीं। कंचन को नहीं था और वह कंचन भी नहीं था। उसे खबर है। यह फिर तुमने बाद में कहा, मैं कहनेवाला था। १९८७ में अकेले, अकेले थे। पैसे भी नहीं। होंगे पाँच-सात हजार। पाँच हजार और व्यक्ति बहुत बड़ा इज्जतदार और बिल्डर के साथ और सबके साथ बड़ा काम करनेवाला। तुम्हारे काका मनमोहनदास के साथ। हमें खबर है। (संवत्) १९७६ के वर्ष। कोई नहीं होता, अकेला और अकेला। उसके कारण आता हो तो उस समय क्यों नहीं था? अब आये तो कंचनबाई आयी और सोना पाँच-सात-दस लाख आया। तीन तो बंगले दो-दो लाख के। पति-पत्नी दो व्यक्ति हैं।

मुमुक्षु : होशियारी तो तब भी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार थी। होशियार से आता है और जाता है ? धूल में है। वह तो पूर्व के पुण्य के कारण आता है, वह भी निमित्त है। वह चीज़ आती है, जाती है, वह स्वयं के कारण से आती है, जाती है। पूर्व के पुण्य के कारण आती है, जाती है-ऐसा कहना भी निमित्त का व्यवहार है। आहा..हा..! एक-एक रजकण स्वतन्त्र है। वह अपनी पर्याय करने में स्वतन्त्र है। क्या तेरे कारण उसमें कुछ होता है ? समझ में आया ?

यदि ये तुम्हारे स्वरूप नहीं अपितु तुम्हारे होते तो प्रयोग के बिना ही ये जहाँ चाहे कैसे चले जाते ? तेरा तो उन्हें नाश करने का भाव नहीं, तेरा तो रखने का भाव है तो क्यों चले जाते हैं ? तेरे प्रयोग बिना, भाई ! तुझे उसमें कुछ करना नहीं। शरीर चला जाता है। देखो, वह तो जड़-मिट्टी है। प्रयोग तो नहीं, शरीर का नाश करने का प्रयोग है ? सफेद बाल हो गये। यह ठीक कहते हैं, लो ! तुझे सफेद बाल करने थे ? वह तो जड़ है, मिट्टी है।

मुमुक्षु : शीर्षासन करने पर भी बाल सफेद हो गये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जड़ की दशा है। क्या आत्मा शीर्षासन कर सकता है ? यह यहाँ कहते हैं। शीर्षासन में ऐसे शरीर उल्टा हुआ, वह भी आत्मा की इच्छा बिना स्वतन्त्र हुआ है। वह जड़ की अवस्था है और नहीं होना, वह भी जड़ की अवस्था है। आत्मा से पर में कुछ नहीं होता। मुझसे पर में होता है, यह मान्यता जड़ और चैतन्य को एक मानने की भ्रमणा है। आहा..हा..! समझ में आया ?

देखो ! **तुम्हारे होते तो प्रयोग के बिना..** शरीर का नाश करने का भाव है ? कहते हैं। स्त्री का नाश करने का भाव है ? अन्दर में प्रयोग है न ? प्रयोग अर्थात् तुझे कुछ करने का भाव नहीं, ऐसा। तेरे प्रयोग बिना, तेरी इच्छा नहीं कि शरीर चला जाये, शरीर में रोग आवे, स्त्री चली जाये, परिवार चला जाये, मकान चला जाये, इज्जत चली जाये, तेरी इच्छा है ? सुन तो सही। प्रयोग बिना वे **जहाँ चाहे कैसे चले जाते ?** जैसे उनकी परिणति, पर्याय होनेवाली है, वैसे होती है। तेरी इच्छा से उसमें होता है ? तू उनका रक्षक है ? और तू उनका भक्षक-नाशक है ? बिल्कुल मिथ्या बात है। तेरा तत्त्व और परतत्त्व की भिन्नता का तुझे भान नहीं है। समझ में आया ?

साधु, त्यागी होकर भी ऐसा माने कि शरीर अच्छा हो तो धर्म अच्छा होगा। (वह) मूढ़ है। समझ में आया? आहार अच्छा हो तो हमारे परिणाम अच्छे होंगे, मूढ़ है। ऐसा कहाँ से लाया? आहार तो जड़ है। खाने से हुआ, ऐसा है ही नहीं, वह तो निमित्त का कथन है। आहार तो जड़ है। क्या जड़, आत्मा के परिणाम बिगाड़ता है? तू बिगाड़ता है, तब जड़ को निमित्त कहने में आता है। क्या आहार, परिणाम बिगाड़ता है? समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..हा..!

जहाँ चाहे कैसे चले जाते? तेरी इच्छा बिना आहार किस प्रकार नहीं आता? क्यों आहार ले? ले और उल्टी हो जाये। इच्छा तो हुई कि मैं लूँ और लिया। लिया क्या, वह तो उसके कारण आया है।

मुमुक्षु : तो फिर आहार लेना या नहीं लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार कौन ले सकता है? पुद्गल को ले सके और छोड़ सके, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव की है। धर्मी जीव की ऐसी मान्यता नहीं होती। आहा..हा..! छगनभाई! क्या करना इसमें? आहा..हा..! लोगों में भी नहीं कहते? 'दाने-दाने में खानेवाले का नाम है' आता है या नहीं? दाने-दाने में खानेवाले का नाम का अर्थ क्या है? उसका अर्थ क्या? जो अनाज के-रजकण के पुद्गल परमाणु पिण्ड यहाँ आनेवाले हैं, वे आयेंगे; नहीं आनेवाले, नहीं आयेंगे। तेरी इच्छा से बिल्कुल काम नहीं होता। ओहो..हो..! परन्तु गजब अभिमान! मैंने ऐसा किया, पहले कैसा स्वाधीन था? पहले ऐसा खा सकता था, पहले ऐसा शरीर चला सकता था। कौन चलाता था? आत्मा? आत्मा चला सकता था?

मुमुक्षु : देखने में तो ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देखने में आता था? वह तो मूढ़ मानता था। ऐसा देखने में नहीं आता। समझ में आया?

मुमुक्षु : जगत से निराली बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग की बात जगत से निराली है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष देखे। सब पदार्थ भिन्न-भिन्न देखे। कोई पदार्थ दूसरे भिन्न पदार्थ को रख सके, नाश कर सके, दूर हटा सके,

ऐसे लकड़ी है, उसे दूर हटा सके—ऐसी आत्मा में आत्मा नहीं है। समझ में आया? आहा..! ऐसे ऊँचा ले सके, ऐसी आत्मा में ताकत नहीं है। तुझसे ऊँचा होता हो तो जब इच्छा होवे, न हो तो ऊँ... ऊँ... हो जाता है। होता है या नहीं? सर्दी के दिनों में शीत होती है या नहीं? (हाथ) ऐसा हो जाता है। ऐसे लेने जाये तो (ले नहीं सकता)। गर्म करो, गर्म करो, (ऐसा कहता है)। भाई! वह जड़ की पर्याय है। तेरा काम नहीं। तेरे प्रयोग बिना वह चीज़ ऐसी होती है, उसकी तुझे खबर नहीं पड़ती? तेरी इच्छा नहीं कि तेरा ज्ञान काम नहीं करता कि मुझे ऐसा होता है, तथापि ऐसा होता है, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? शरीर में ऐसा होता है, वह शरीर की पर्याय के कारण होता है। तेरे कारण पर में बिल्कुल नहीं होता। भाषा-वाषा कौन करे? गुलाबभाई! ऐसा कहते हैं। सुधरा हुआ व्यक्ति हो, बहुत होशियार भाषण करे। वह कहे, महावीर और वे दोनों एक हैं। उसके प्रमुख ऊपर (बैठे हों)। कल तो सुनकर मुझे बहुत हो गया। अरे! यह जैन ही नहीं। कहा, इसे तो जैन की खबर नहीं। ऐई! झीणबेन कहा गये? बेन को बात करनी चाहिए न!

वह कहे महावीर ऐसा कहते हैं कि मोहम्मद वे पक्के जैन हैं। मोहम्मद ऐसा कहे कि महावीर पक्के मुसलमान हैं। अर र! यह वाणी सुन न? यह वाणी? जैन के कुल में आर्य मनुष्य भी ऐसा विचारे कि एक मुसलमान और कहाँ महावीर, कहाँ ख्रिस्ती ईशु और कहाँ महावीर? कहाँ महावीर केवलज्ञानी एक समय में तीन काल तीन लोक के जाननेवाले और कहाँ वह माँस खानेवाला। अन्त में कहे, ईशु कि गाय का माँस लाओ। कहो, वह उसे जैन कहे और यह उसे क्रिश्चियन कहे। भाई ने बात की, भाई ने बात की, तब मुझे खबर पड़ी की ओय यह तो पोलमपोल लगती है। यह तो पोला बजता लगता है। आहा..हा..! इतना भी जीवन में अन्तर व्यवहार से पाड़ने की ताकत नहीं, उसे धर्म कब होगा? और कल्याण कब होगा? कहाँ सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञान में आ गये हैं। कहाँ केवली और कहाँ ईशु? मरते हुए कहे, गाय का माँस लाओ। आहा..हा..! कहाँ मोहम्मद और कहाँ महावीर? समझ में आया? कहाँ माँस खानेवाले प्राणी नरक में जानेवाले और (कहाँ) भगवान एक समय में मोक्ष अनुभव करनेवाले? आहा..हा..! कुछ बात सुनते हुए... समझ में आता है?

उसे आत्मा का विवेक कब हो, वह कहते हैं। तुझे आत्मा और दूसरे आत्मा और

दूसरे परमाणु भिन्न-भिन्न तेरे प्रयोग बिना, उनमें आना-जाना हो जाता है। तेरे कारण नहीं। समझ में आया? **प्रयोग के बिना ही ये जहाँ चाहे कैसे चले जाते?** उस पक्षी का दृष्टान्त दिया न? पक्षी का दृष्टान्त नहीं दिया? शाम को पक्षी आये, किस देश में से और किस दिशा से? किस देश में से और किस दिशा में से पक्षी आये? और सबेरे किस दिशा में और किस देश में चले जाते हैं? ऐसे एक पदार्थ कहाँ से आया और कहाँ चला जाये? समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में दृष्टान्त दिया है। एक पागल था, पागल। वह पागल गाँव के बाहर निकल गया। गाँव में था, बाहर गया। बड़ी नदी थी। नदी समझते हो? पानी भरा है। वह पागल था। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी (कहते हैं)। बाहर पत्थर पर बैठा था। वहाँ नौ बजे, साढ़े नौ बजे एक राजा आया, राजा। पहले तो हाथी पर चलते थे न? अभी रेल हो गयी। राजा आया दस बजे, कहीं देशान्तर जाना होगा। पच्चीस-पचास कोस, तो वहाँ पड़ाव डाला कि यहाँ भोजन करेंगे, पानी है, नदी है। पागल कहे कि ओहो! लोग आये, रानी आयी, यह मेरी रानी आयी। घोड़े आये तो कहे, मेरे घोड़े आये। हाथी आये तो कहे मेरे हाथी आये। ओहो..हो..! ठाठ-बाट जम गया। फिर भोजन करके विश्राम किया चार बजे चलने लगे, (तब वह पागल कहे) पूछे बिना कैसे जाते हो? अरे! पूछे बिना कैसे जाते हो? यह मूर्ख लगता है। पागल है? हम तो हमारे कारण आये थे और हमारी अवधि पूरी होने से हम चले जाते हैं। तुझे क्या अधिकार है हमें कहने का? अरे! तुम हमारे हो न! मैं बैठा हूँ और तुम आये हो या नहीं? मैं पहले से बैठा था और तुम (बाद में) आये, तो पूछे बिना कैसे जाते हो? यह तो पागल लगता है।

इसी प्रकार एक आत्मा किसी दूसरे भव में से एक कुल में आया। आया और बड़ा हुआ और पूर्व के पुण्य के कारण अथवा किसी कारण से दूसरे स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, वह जैसे राजा आया वैसे वे चीज़ें आयी। आयी और जैसे अवधि पूरी हो और चली जाती है। अरे! कैसे चले जाते हो? परन्तु हम कहाँ तेरे हैं कि नहीं जायें? मरे तो फिर सिर फोड़े। अरे! मेरी स्त्री मर गयी। परन्तु हम कहाँ तेरे कारण आये थे? हमारे पुण्य की प्रकृति और स्थिति थी, उस कारण से हम आये थे, हमारी स्थिति पूरी हुई तो हम चले जाते हैं। तेरे कारण हम आये ही नहीं और तेरे कारण हम जाते नहीं। आहा..हा..!

यह कहते हैं न ? देखो ! **प्रयोग के बिना ही ये जहाँ चाहे कैसे चले जाते ?** तेरी स्थिति से यदि आते हों तो तेरे रहते हुए वे चले कैसे जाते हैं ? शरीर बिगड़ जाये, सब चले जाते हैं। स्त्री, वि.., वे तो परपदार्थ हैं। तेरे कारण आये हैं और तेरे कारण जाते हैं ? एकदम मिथ्या बात है।

मुमुक्षु : लोग आश्वासन किस प्रकार से देते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरा ज्ञान, आनन्द है, वह आश्वासन ले। तू ज्ञाता है, भगवान ! तू तो जानने-देखनेवाला है। है तो जानो, न हो तो भी जानो। जानने-देखनेवाली तेरी चीज़ भिन्न है, वे चीज़ें भिन्न हैं। यह समाधान कर ले, ऐसी बात है। मोहनभाई ! आहा..हा.. ! और कैसे हुआ ? श्वास कैसे डाला ? तुम्हारे क्या है ? (उसे ऐसा होता होगा कि) यह तो सब झूठ निकलता है। तुम्हारी अस्ति में लड़के अलग पड़ गये या नहीं ? तुम्हारी अस्ति में उनके पास तुम्हारी अपेक्षा पैसे बढ़ गये या नहीं ?

मुमुक्षु : वह तो प्रसन्नता से किये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कारण से करता था, मुफ्त में किया है ? यह सब समझने जैसा है। कहो, समझ में आया ? मुझे सब खबर होगी न ! क्या कारण है।

अतः मोहनीय पिशाच के आवेश को दूर हटा.. अरे आत्मा ! मोहनीय पिशाच भूत का तुझे भूत लगा है। आहा..हा.. ! तुझे मिथ्यात्व का भूत लगा है कि मैंने परचीज़ें में ऐसा किया था, अब मैं नहीं कर सकता। मिथ्यात्व का भूत लगा है, उस पिशाच के आवेश को दूर हटा। आवेश छोड़ दे, प्रभु ! तू तो ज्ञान है न ! तू तो आनन्द है न ! परचीज़ को मैंने किया था और रखा था, छोड़ दी, ऐसा कैसे मानता है ? छोड़, छोड़।

ठीक-ठीक देखने की चेष्टा कर। देखो ! क्या कहते हैं ? **मोहनीय पिशाच के आवेश को दूर हटा ठीक-ठीक देखने की..** ठीक-ठीक का अर्थ जैसा उसका स्वभाव है, वैसा देख। उसके कारण से आये और उसके कारण से जाते हैं, ऐसा स्वभाव है। ऐसा जैसा है, वैसा देख। ठीक है ? देखो ! क्या कहते हैं ? **मोहनीय पिशाच के आवेश को दूर हटा..** भाई ! तेरी चीज़ तो भिन्न है न, भाई ! ओ..हो.हो.. ! सर्वज्ञ भगवान तो एक पुण्य के विकल्प को भी छोड़कर वीतराग हो गये। महाव्रत के परिणाम आये थे, पहले मुनि थे

तो महाव्रत के परिणाम (हुए थे), वह तो राग है। दया, दान, अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, वह तो राग है। उस राग को भी छोड़कर वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर हो गये। समझ में आया? वे परमेश्वर कहते हैं कि तुझे परपदार्थ का भूत लगा है। मिथ्यात्व का पिशाच (लगा है) तो देखने में नहीं आता। तेरी देखने की दृष्टि सच्ची नहीं है। हमारे कारण आये हैं और हमारे कारण चले जाते हैं। हम जितनी व्यवस्था करते हैं, उस प्रमाण में रहते हैं, हमारी व्यवस्था ठीक न हो तो चले जाते हैं। (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है।

मुमुक्षु : व्यवस्था भूत करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवस्था कर नहीं सकता, फिर प्रश्न कहाँ है? पर की स्वतन्त्र पदार्थ की व्यवस्था तू कर सकता है? बसन्तलालजी! यह सब होशियारी तब कहाँ गयी? भाषा कैसी की है! देखो न!

मोहनीय पिशाच के आवेश को दूर हटा, ठीक-ठीक देखने की चेष्टा कर। इसका अर्थ कि उनके कारण आते हैं और उनके कारण रहते हैं और उनके कारण से जाते हैं। तू तो जाननेवाला-देखनेवाला है, ऐसी दृष्टि कर। इसके बिना तेरी स्वतन्त्र की श्रद्धा सच्ची नहीं होगी और उसके बिना तेरा कल्याण नहीं होगा। कहो, बराबर है?

दोहा – दिशा देश से आयकर, पक्षी वृक्ष बसन्त।
प्रात होत निज कार्यवश, इच्छित देश उड़न्त।।९।।

दिशा देश से आयकर.. किसी दिशा और किसी देश, ऐसा। किसी दिशा और किसी देश। वहाँ से आकर पक्षी **वृक्ष बसन्त** वृक्ष में रहते हैं। **प्रात होत** सबेरा पड़ने पर **निज कार्यवश,** अपने कार्यवश, किसी के कारण से नहीं, कोई नहीं। किसी को पूछते नहीं कि अब हम जाते हैं, कहाँ जाते हैं। **निज कार्यवश, इच्छित देश उड़न्त।** जहाँ इच्छा है, उस दिशा और देश में पक्षी चले जाते हैं। ऐसे भगवान तेरा आत्मा कहाँ से आया, दूसरा कहाँ से आता है, उसकी स्थिति प्रमाण रहता। स्थिति पूरी होने पर चले जाते हैं। तुझे और उन्हें कोई सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया?

उत्थानिका – आचार्य आगे के श्लोक में शत्रुओं के प्रति होनेवाले भावों को 'ये हमारे शत्रु हैं' 'अहितकर्ता हैं' आदि अज्ञानपूर्ण बतलाते हुए उसे दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं, साथ ही ऐसे भावों को दूर करने के लिये प्रेरणा भी करते हैं –

विराधकः कथं हंत्रे जनाय परिकुप्यति।
त्र्यगुलं पातयन्पद्भ्यां स्वयं दडेन पात्यते।।१०।।

अर्थ – जिसने पहिले दूसरे को सताया या तकलीफ पहुँचाई है, ऐसा पुरुष उस सताये गये और वर्तमान में अपने को मारनेवाले के प्रति क्यों गुस्सा करता है? यह कुछ जँचता नहीं। अरे! जो त्र्यंङ्गुल को पैरों से गिरायगा वह दण्डे के द्वारा स्वयं गिरा दिया जायेगा।

विशदार्थ – दूसरे का अपकार करनेवाला मनुष्य, बदले में अपकार करनेवाले के प्रति क्यों हर तरह से कुपित होता है? कुछ समझ में नहीं आता।

भाई! सुनिश्चित रीति या पद्धति यही है कि संसार में जो किसी को सुख या दुःख पहुँचाता है, वह उसके द्वारा सुख और दुःख को प्राप्त किया करता है। जब तुमने किसी दुसरे को दुःख पहुँचाया है तो बदले में तुम्हें भी उसके द्वारा दुःख मिलना ही चाहिये। इसमें गुस्सा करने की क्या बात है? अर्थात् गुस्सा करना अन्याय है, अयुक्त है। इसमें दृष्टांत देते हैं कि जो बिना विचारे काम करनेवाला पुरुष है, वह तीन अंगुली के आकारवाले कूड़ा–कचरा आदि के समेटने के काम में आनेवाले 'अंगुल' नामक यंत्र को पैरों से जमीन पर गिराता है, तो वह बिना किसी अन्य की प्रेरणा के स्वयं ही हाथ में पकड़े हुए डण्डे से गिरा दिया जाता है। इसलिए अहित करनेवाले व्यक्ति के प्रति, अपना हित चाहनेवाले बुद्धिमानों को, अप्रीति, अप्रेम या द्वेष नहीं करना चाहिए।।१०।।

दोहा – अपराधी जन क्यों करे, हन्ता जनपर क्रोध।
दो पग अंगुल महि नमे, आपहि गिरत अबोध।।१०।।

गाथा - १० पर प्रवचन

अब दूसरी बात (करते हैं)। अब आचार्य आगे के श्लोक में शत्रुओं के प्रति

होनेवाले भावों को 'ये हमारे शत्रु हैं' 'अहितकर्ता हैं' आदि अज्ञानपूर्ण बतलाते हुए.. लो, समझ में आया? 'यह मेरे शत्रु हैं' मूढ़ है, शत्रु कहाँ से आया? वह तो परवस्तु है। परवस्तु शत्रु कहाँ है? यह मेरा अहित करता है। परवस्तु अहित करती है? तेरी मान्यता विपरीत है कि मेरा अहित करता है, यह मान्यता तुझे अहित करता है। आहा..हा..! समझ में आया?

एक व्यक्ति कहता था, भाई! नहीं! दो-तीन भाई इकट्ठे थे। फिर ५०-५५ वर्ष की उम्र हुई (तब कहे), कमा-कमाकर कमर टूट गयी। नाम नहीं लेते। फिर कहे कि ये छोटे भाई कहते हैं कि समान बाँट दो। अपने पिता बैठे हैं, पिताजी बैठे हैं और भाग किये नहीं। तूने भले कमाया परन्तु तीन भाईयों के भाग समान कर। हाय.. हाय..! परन्तु यह ५५ वर्ष तक कमर टूट गयी। अब छोटे से बड़े हुए। अभी तक मैंने पाप किये। अब मेरी कमाने की ताकत रही नहीं और तुम कहते हो समान भाग करो। भाई! भाग नहीं करे तो कौन करे? लाओ समान (भाग)। ए.. मोहनभाई! फिर वह आकर मुझसे बात करे। यहाँ तो बहुत बात करते हैं या नहीं? बड़ा भाई था। वैसे तो लाखोंपति (था)। वहाँ मुम्बई में बड़ी दुकान थी। अरे! मैंने इतना-इतना धन्धा किया, उम्र हो गयी, वृद्धावस्था हो गयी, कमर ऐसी हो गयी। भाई कहते हैं कि समान भाग करो। परन्तु दो भाग मेरा और दो आधे भाग (इनके), ऐसा करो तो ठीक। (वे लोग कहे) समान तीन भाग करो। अब मेरी कमाने की शक्ति कम हो गयी और वृद्धावस्था हो गयी। ये लोग तो जवान हैं। यह तो संसार ऐसा है, भाई! संसार तो ऐसा ही है। क्या करना? तुमने कमाया, वह तुम्हारी ममता के लिये किया था। लड़कों के लिये किया था? तुम्हारे भाईयों के लिये किया था? ममता की थी। कमाना तो पुण्य के कारण आता है। तुमने तो ममता की थी, ममता। चीज़ आने-जानेवाली है, वह तो पूर्व के पुण्य के कारण से आती है, जाती है। तेरे कारण आती-जाती है? हाय.. हाय..! अब?

मुमुक्षु : पारिश्रमिक.....

पूज्य गुरुदेवश्री : पारिश्रमिक नहीं, तीन भाग समान करो। पिताजी बैठे हैं, कहे। समान भाग (करो)। पाँच लाख होवे तो डेढ़-डेढ़ लाख समान दो। पचास हजार के भाग फिर करो। नहीं एक भी। भाई बढ़े। नहीं आवे वह.... मलूपचन्दभाई! बापू! यह तो सब

सबके स्वार्थी अपनी इच्छा प्रमाण सब चलता है। दूसरा पदार्थ तेरी इच्छा प्रमाण चले, ऐसा कहाँ से आया ? आहा..हा.. ! कौन करे ? ममता है।

शत्रुओं के प्रति होनेवाले भावों को 'ये हमारे शत्रु हैं' 'अहितकर्ता हैं' आदि अज्ञानपूर्ण बतलाते हुए उसे दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं, साथ ही ऐसे भावों को दूर करने के लिये प्रेरणा भी करते हैं –

विराधकः कथं हंत्रे जनाय परिकुप्यति।
त्र्यगुलं पातयन्पद्भ्यां स्वयं दडेन पात्यते।।१०।।

'विराधकः' जिसने पहिले दूसरे को सताया.. वह विराधक। अपकार करे, वह विराधक। जिसने पहले दूसरे का अपकार किया हो, भाव में, हों! उसे उसके पाप के कारण से अपकार हो गया हो, उसका नाम विराधक। संस्कृत में है न ? भाई! देखो! '**अपकारकर्त्ता जनः**' पहली लाईन है। अन्दर संस्कृत है। यहाँ तो ऐसा कहना है कि **जिसने पहिले दूसरे को सताया..** जिस अपराधी प्राणी ने दूसरे प्राणी को पहले पाप करके सताया, निमित्त हुआ। तकलीफ पहुँचायी है, **ऐसा पुरुष उस सताये गये और वर्तमान में अपने को मारनेवाले के प्रति क्यों गुस्सा करता है?** क्या कहा ? तूने पूर्व में उस प्राणी को सताया था और तेरे कारण वह दुःखी हुआ था। समझ में आया ? तकलीफ हुई थी। अब वह प्राणी तुझे तकलीफ देता है। गुस्सा क्यों करता है ? भाई! ऐसी बात ली है। **सताये गये और वर्तमान में अपने को मारनेवाले के प्रति क्यों गुस्सा करता है?** तेरे कारण उसे नुकसान हुआ था। निमित्त से कथन है, हों! वह तुझे नुकसान करने आया तो गुस्सा क्यों करता है ? वह तो अदल-बदल हो गयी। समझ में आया ? यह तो सब निमित्त के कथन हैं, हों! तेरा भाव उसे नुकसान पहुँचाने का था और उसे पाप के उदय से नुकसान पहुँचा, तो वह तुझे नुकसान पहुँचाने आता है। ऐसे भाव करता है और तेरे पाप का उदय ऐसा प्रतिकूल हो तो पर के प्रति गुस्सा क्यों करता है ? नम्बर से...लड़के नहीं कहते ? खेलते हैं न ? ऐसे उठाकर नहीं खेलते। लड़के एक-दूसरे को उठाते हैं न ? आज मेरा नम्बर, फिर अभी तेरा नम्बर आयेगा। तू मुझे उठाना।

ऐसा कहते हैं कि जिस जीव ने दूसरे को सताया, वह प्राणी तुझे सताता है (तो) गुस्सा क्यों करता है ? समझ में आया ? ऐई! आता है या नहीं ? लड़के खेलते हैं, तब क्या

कहलाता है ? आता है, भाई ! हमारे समय में वह था, लड़के को ऐसे ऊपर उठावे। दाव लेना पड़े, देना पड़े। ऐसा कुछ था अवश्य ? बहुत वर्ष की बातें हैं। यह व्यवहार से बात की है, हों ! तूने ऐसे भाव किये थे कि दूसरे को नुकसान पहुँचा दूँ और उसका पाप का उदय था तो नुकसान पहुँचा और उस प्राणी को ऐसा (भाव) आया कि इसे नुकसान कर दूँ।

फिर से, जिससे नुकसान हुआ, उसे नुकसान कर दूँ। तो कहते हैं कि वह नुकसान करने का भाव उसका हुआ और तुझे नुकसान करने, मारने आया तो गुस्सा क्यों करता है ? तूने किया था, वैसा वह करता है। ऐई !

सताये गये और वर्तमान में अपने को मारनेवाले के प्रति.. है न ? क्यों **क्यों गुस्सा करता है ? यह कुछ जँचता नहीं।** यह बात हमें कुछ जँचती नहीं, ऐसा कहते हैं, आचार्य ऐसा कहते हैं, भाई ! तूने दूसरे को नुकसान पहुँचाया था, अब दूसरा तुझे नुकसान पहुँचाता है। यह तो अदला-बदली होती है, इसमें गुस्सा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तूने पाँच गाली दी थी तो वह सामने पाँच गाली देता है, ऐसा कहते हैं। क्या है तुझे ? ऐसा दृष्टान्त देकर पर जो प्रतिकूलता देता है, उसके प्रति गुस्सा नहीं करना। (इस गुस्से के भाव को) छुड़ाने के लिये बात करते हैं। समझ में आया ?

शरीर में प्रतिकूलता हो, लक्ष्मी चली जाये, ऐसा हो। कोई प्राणी उसमें निमित्त हो गया। समझ में आया ? तू भी उसके नुकसान में निमित्त हुआ था, तो गुस्सा क्या करना ? पर के प्रति गुस्सा करना नहीं। हमारी इज्जत लूट ली, तूने पहले उसकी इज्जत लूटी होगी। समझ में आया ? अरे ! हमारी इज्जत लुट गयी। हमारा सब खुला पड़ गया, हमारा खेल खत्म हो गया। बाहर में हमारे पास पूँजी, दौलत बहुत थी, मोभो... मोभा को क्या कहते हैं ? हिन्दी में क्या कहते हैं ? (अभिमान)। अभिमान नहीं, अभिमान नहीं। ऐसा स्थान / प्रतिष्ठा इतनी जमी हुई थी कि हम ऐसे पाँच लाख, दस लाख, पच्चीस लाख के आसामी हैं। अन्दर में इतना नहीं था। ऐसा मोभा रखा था, स्थान रखा था। उसमें दूसरे ने खोल दिया कि इसके पास कुछ नहीं है। हें ! यह तो व्यर्थ का (दिखाव) करता है, अन्दर एक टके ब्याज लेता है। पैसा-टका के ब्याज से लेकर दस-दस लाख को निभाता है। हैं ? भाई ! तूने किसी का ऐसा किया होगा, तो वह तुझे करता है, उसमें क्या है ? गुस्सा क्या करना ? समझना, ज्ञान करना कि ऐसा होता है, जगत में ऐसी चीज़ होती है। ऐसी समता करके आत्मा का ज्ञान

करना, समता करना, गुस्सा हटाना, यह बात करते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? यह तो उपदेश की व्याख्या है न।

यह कुछ जँचता नहीं। अरे! जो त्र्यंगुल को पैरों से गिरायगा वह दण्डे के द्वारा स्वयं गिरा दिया जायेगा। ऐसा कोई कचरा ऐसे हाथ में डण्डा रखा हो, फिर नीचे से पैर से हटा दे। नीचे से दो पैर से डण्डा हटा दे तो डण्डा पकड़कर पड़े। समझ में आया? क्या कहा? कोई त्र्यंगुल ऐसा हथियार है कि वह नीचे से कचरा काटे और यहाँ से डण्डा पकड़ा हो। दो पैर उठाकर हटायेगा तो तू भी नीचे गिर पड़ेगा। तुझे ही तुझसे नुकसान होगा, दूसरे से नुकसान होगा नहीं। समझ में आया?

दूसरे का अपकार करनेवाला मनुष्य, बदले में अपकार करनेवाले के प्रति क्यों हर तरह से कुपित होता है? कुछ समझ में नहीं आता। समझ में आया? यह एक परस्पर की बात करते हैं। इस प्राणी के प्रति न किया हो परन्तु पूर्व में कोई पापभाव इसने किया हो और दूसरे को बाहर में कोई नुकसान हुआ हो तो वही प्राणी अथवा दूसरा प्राणी तेरे पाप के उदय के काल में वह प्रतिकूलता देने आता है तो गुस्सा क्या करना? वह कोई (कुछ) कर नहीं सकता, पर मेरा नुकसान नहीं कर सकता। मैंने दूसरे का नुकसान किया नहीं। ऐसा मानकर गुस्सा छोड़ना, ज्ञाता-दृष्टा रहकर समाधान करना, समाधान करना, गुस्सा करना नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भाई! देखो! **कुछ समझ में नहीं आता।** भाषा तो ऐसी ही आवे न! समझ में तो आता है भान बिना का परन्तु भाषा तो ऐसी ही करे न! कुछ समझ में नहीं आता, क्या करता है यह? अर्थात्? समझते हैं कि बुरा करता है। ऐसा बोलते हैं या नहीं? यह क्या करता है, परन्तु यह? अरे! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को करे? किस प्रकार करे? क्या उस द्रव्य की पर्याय का स्वरूप काल नहीं था कि दूसरा द्रव्य उसे करावे? नहीं। दूसरा द्रव्य आवे तो ही होता है। क्या होता है? दूसरे द्रव्य में उसके स्वरूप से होता है या परस्वरूप से होता है? अपने-अपने स्वरूप से प्रत्येक में पर्याय होती है। दूसरा द्रव्य उसमें क्या लाभ रख सकता है? बड़ा पण्डित होकर सिर घुमा गये हैं, लो! आहा..हा..!

शरीर की पर्याय चलती है, देखो! पर्याय है, वह तो शरीर की है। वह अपने स्वरूप से है, अपने स्वरूप से है। उसमें आत्मा की इच्छा हुई तो इच्छा अपने स्वरूप से हुई है।

वह (शरीर) उसके स्वरूप से है। इच्छा परस्वरूप में घुसकर क्या करे? इच्छा निमित्त होकर इस शरीर की पर्याय का स्वरूप किस प्रकार करे? क्योंकि शरीर का स्वरूप परस्वरूप है। इच्छा परस्वरूप, उस परस्वरूप का किस प्रकार करे? समझ में आया? इच्छा उसमें घुस जाती है? इच्छा का स्वरूप यहाँ प्रविष्ट होकर शरीर की क्रिया करता है? मूढ़ है। वह तो शरीर की पर्याय है। आहा..हा..! समझ में आया?

खाने की इच्छा हुई। समझ में आया? वह पर्याय का जड़स्वरूप है, उसमें इच्छा ने अपना क्या स्वरूप डाला कि उसके होंठ हिलाये?

मुमुक्षु : दाँत हिलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दाँत किसके हैं? दाँत जड़ की पर्याय है। उसमें ऐसा ही होता है। इच्छा ने क्या दाँत की पर्याय में कोई स्वरूप डाल दिया? कि आत्मा में दाँत ऐसे-ऐसे किये? आहा..हा..! समझ में आया? इच्छा दाँत को हिला नहीं सकती, ऐसा कहते हैं। इच्छा अपने विकृत स्वरूप में रहनेवाला भाव है और यह स्वरूप है, वह जड़स्वरूप है। अत: इच्छा का स्वरूप जड़स्वरूप में प्रविष्ट हो जाता है कि जड़ को बनावे। आहा..हा..! लोगों को बहुत सूक्ष्म पड़ता है। समझ में आया?

भाई! सुनिश्चित रीति या पद्धति यही है.. देखो! **भाई! सुनिश्चित रीति या पद्धति यही है कि संसार में जो किसी को सुख या दु:ख पहुँचाता है, वह उसके द्वारा सुख और दु:ख को प्राप्त किया करता है।** ऐसा होता है। यह तो एक सिद्धान्त है, हों! यही (नुकसान) पहुँचावे, ऐसा कुछ नहीं, परन्तु दूसरे द्रव्य को दु:ख देने का भाव हुआ और दूसरे द्रव्य में ऐसा दु:ख देने का भाव हुआ तो अदल-बदल हुआ। उसमें तुझे गुस्सा करने का कहाँ रहा? आहा..हा..!

यहाँ तो परपदार्थ तेरे पदार्थ में कुछ नुकसान नहीं कर सकता और तू भी दूसरे को (नुकसान नहीं कर सकता)। परन्तु तेरा भाव नुकसान करने का था और उसके पाप के उदय से नुकसान हुआ तो उसे ऐसा भाव हुआ कि इसे नुकसान कर दूँ। इससे तेरा नुकसान नहीं होता। समता रख... समता रख, शान्ति कर। आहा..हा..!

अरे! अभी तक लड़कों का ऐसा पालन-पोषण किया, जिसके लिये हैरान हो गये।

साठ वर्ष हो गये। अब कहते है कि विवाह हुआ, अलग कर दो। क्यों ? मेरी माँ को और पत्नी को मिलान नहीं खाता, बनती नहीं। हाय... हाय.. ! क्लेश करती हैं, वापस ऐसा कहे। मेरी माँ को और यह किसी की लड़की है न ? दोनों को मेल नहीं है, मेल नहीं खाता, अतः बापू ! हमें अलग कर दो। तू यह क्या बोलता है ? कहो, समझ में आया या नहीं ? बहाना ले स्त्री का, अलग होना है। आहा..हा.. !

रवारी थे। कहा नहीं था ? रवारी था, उसके लड़के का लड़का था। लड़के का लड़का। राजकोट के पास गाँव है। हम गये थे। लड़का था बावड़ जैसा, परन्तु उसके पिता का पिता होशियार, गाँव में बहुत इज्जतदार। तब हम गये थे, तब दोनों अलग पड़े। घर में से वह लड़का और लड़की बहू (अलग हुए) उसके पिता का पिता ८० वर्ष का और उसकी माँ। आहा..हा.. ! अरे ! लड़के तेरे लिये यह सब किया। ८०-८० वर्ष के हुए और हमारे सफेदी में तू धूल डालता है। इस गाँव में गरासिया हमको पूछते हैं और तू अलग करता है। बबूल के पेड़ जैसा तू, तुझे कोई पत्नी हो सकती है ? तेरी स्त्री मेरे कारण है, ऐसा कहे। लड़का ऐसा जड़ जैसा था। तुझे यह स्त्री नहीं होती। इज्जत के कारण (मिली है)। रवारी इज्जतदार था। शाम को अलग पड़ा। दामसिया-वामसिया आधा टूटा-टूटा अलग कर दिया। परन्तु क्या करे ? उसके ऐसे ही परिणाम हैं और तुझे भी ऐसा पाप का उदय आया है। ऐसा बननेवाला हो तो बनेगा, बनेगा और बनेगा ही। तुझे समता रखना। अरे ! मैंने इतना किया और यह अलग पड़ता है। मोहनभाई ! एक ही लड़का हो तो अलग किसके साथ पड़े ? वह तो लड़के का लड़का, वह भी लड़के का लड़का अलग पड़ा। हम वहाँ चौरा में बैठे थे। देवी का मन्दिर था वहाँ बैठे थे।

अरे ! भाई ! कौन किसका पुत्र ? और कौन अलग पड़े ? कौन-कौन इकट्ठे हों ? यह सब तेरी भ्रमणा है। पूर्व के उदय से आये और उदय पूरा होने पर चले जाते हैं। उसमें तुझे क्या हुआ ? ऐसी भ्रमणा करे कि अरे ! मैंने इसका पालन किया और सही समय में हमारी सेवा करने के काल में कहता है कि हमें अलग करो। ठीक, भाई !

मुमुक्षु : उसकी बात तो उचित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ममता की थी, उसमें उचित क्या थी ? ममता थी। स्त्री ऐसी हो, अलग करना हो, घर में पाँच-सात-दस मनुष्य हों और वे पति-पत्नी दो हों। घर में

लापसी खाते हैं परन्तु दसवाँ भाग भी नहीं आता। तुम्हें भान नहीं, अलग होओ। फिर पूरे दिन कोसा करे। करते-करते छह महीने, आठ महीने में अलग करे। क्या करे? पन्द्रह मनुष्यों में हलुवा बनावे, उसमें भाग भी नहीं आता और यह पूरे दिन रोटी पीटनी (बनानी) पड़ती है। बेलनी पड़ती है, क्या कहते हैं उसे? ऐसा कहे। स्त्री उसे कोसा करे। अलग करो, बापू! लो, यह अलग किया। अरे! परन्तु यह तेरी भाभी शिथिल पड़ी। यह तू अलग पड़े वह ठीक नहीं कहलाता। स्त्रियों को मेल नहीं खाता, क्या करे? ऐसे के ऐसे स्वतन्त्र सब प्राणी हैं। कोई किसी के परिणाम से कुछ करता है, ऐसा नहीं है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। धर्मचन्दजी! यह तुम्हारे संसार की पोल! बापू! वह परद्रव्य है। उसके परिणाम वह करता है, तेरे परिणाम तू कर। तेरे परिणाम से उसमें कुछ होता है, ऐसा कभी नहीं होता। उसके परिणाम तुझे नुकसान करते हैं, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया?

उसके द्वारा सुख और दुःख को प्राप्त किया करता है। जब तुमने किसी दुसरे को दुःख पहुँचाया है तो बदले में तुम्हें भी उसके द्वारा दुःख मिलना ही चाहिये। ऐसे संयोग से बात करते हैं। **इसमें गुस्सा करने की क्या बात है? अर्थात् गुस्सा करना अन्याय है,..** ऐसा गुस्सा करना तो अन्याय है। **अयुक्त है। इसमें दृष्टांत देते हैं कि जो बिना विचारे काम करनेवाला पुरुष है..** है न? '**कश्चिदसमीक्ष्यकारी जनः**' है न? संस्कृत में? '**यः कश्चिदसमीक्ष्यकारी जनः**' ऐसा है, संस्कृत में है। समझ में आया? **बिना विचारे काम करनेवाला पुरुष है, वह तीन अंगुली के आकारवाले कूड़ा-कचरा आदि के समेटने के काम में आनेवाले 'अंगुल' नामक यंत्र को पैरों से जमीन पर गिराता है,..** लो! उसे पैर से हटाता है। क्या कहलाता है? वाडवानूं काम कहते? क्या कहते हैं? हिन्दी में क्या कहते हैं? कचरा निकालने का। कचरा निकालने की चीज़ होती है न? झाड़ू निकालने का। भंगी लोग हाथ में ऊपर रखते हैं न? नीचे (झाड़ू होती है।) खड़े-खड़े निकालते हैं न? अब उसमें पैर डाले, पैर (ऊपर) डाले, उसे पैर हटावे तो लकड़ी गिरे तो स्वयं गिरे। समझ में आया? उसमें किसको नुकसान पहुँचेगा? पैर उठाकर झाड़ू को मारे, यहाँ लकड़ी हाथ में पकड़ रखी। स्वयं पड़े, स्वयं पड़ता है और अपने को नुकसान होता है, दूसरे को नुकसान नहीं होता।

जमीन पर गिराता है, तो वह बिना किसी अन्य की प्रेरणा के स्वयं ही हाथ

में पकड़े हुए डण्डे से गिरा दिया जाता है। हाथ में लकड़ी पकड़ी हो, उससे स्वयं गिर जाता है, नीचे पैर मारा इसलिये। **इसलिए अहित करनेवाले व्यक्ति के प्रति, अपना हित चाहनेवाले बुद्धिमानों को, अप्रीति, अप्रेम या द्वेष नहीं करना चाहिए।** किसी के प्रति अप्रीति, द्वेष नहीं करना। पहले में हित करनेवाले की बात थी। स्त्री, कुटुम्ब आदि में। यह जरा शत्रु के प्रति बात करते हैं। जगत में कोई शत्रु नहीं और कोई मित्र नहीं। तेरी मान्यता है कि यह शत्रु है और यह मित्र है। यह तेरी मान्यता भ्रम है, अज्ञान है। कोई शत्रु-मित्र नहीं है। परपदार्थ स्वतन्त्र है।

अहित करनेवाले व्यक्ति के प्रति, अपना हित चाहनेवाले बुद्धिमानों को, अप्रीति, अप्रेम या द्वेष नहीं करना चाहिए। उसकी योग्यता प्रमाण वह चलता है। मुझे उसके साथ क्या सम्बन्ध है ? ऐसा रहकर समता, शान्ति, ज्ञाता-दृष्टा रहना। अप्रेम न करना और द्वेष न करना। लो, ऐसा इसका (मर्म है)।

दोहा – अपराधी जन क्यों करे, हन्ता जनपर क्रोध।
दो पग अंगुल महि नमे, आपहि गिरत अबोध।।१०।।

अपराधी.. अपराध करनेवाला **हन्ता जनपर क्रोध।** तुझे दूसरा कोई मारे, उस पर क्रोध किसलिये करता है ? **दो पग अंगुल महि नमे,..** पैर हटा दे तो। **आपहि गिरत अबोध।** भान बिना स्वयं अपने को नुकसान करता है। अज्ञानी अपने अज्ञान से अपना नुकसान करता है। दूसरे को नुकसान हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। इसलिए अज्ञान छोड़कर, गुस्सा छोड़कर, राग छोड़कर समता करना।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)